क्षेत्रीय मार्गदर्शिका

THE MENTORING PROJECT

अग्नि-परीक्षा का सामना करना

DEREK THOMAS

अग्नि-परीक्षा का सामना करना

DEREK THOMAS

(डेरेक थॉमस)

विषय-वस्तु

परिचय: अग्नि परीक्षाएँ..4

भाग I: प्रत्येक मसीही को परीक्षाओं की अपेक्षा रखनी चाहिए 6

भाग II: अध्ययन सामग्री..12

भाग III: कैसी प्रतिक्रिया नहीं दें...21

भाग IV: अग्नि-परीक्षाओं का सामना करते समय मसीहियों को क्या करना चाहिये? 26

निष्कर्ष 33

परिचय: अग्नि परीक्षाएँ

मेरी पहली कलीसिया की मण्डली में, जहाँ मैं पास्टर का कार्य करता था, एक स्त्री ने एक ऐसी बच्ची को जन्म दिया, जिसे एक बहुत ही कम देखी जाने वाली, आनुवांशिक बीमारी, ट्यूबरस स्क्लिरोसिस थी, इससे उसके मस्तिष्क में अनेकों गाँठें बनती थीं। डॉक्टरों ने कहा कि वह जीवित तो रह पाएगी। उसका पति उन्हें छोड़ कर भाग गया और लौटकर कभी नहीं आया। वर्षों बाद, उस बच्ची की आयु बढ़ने के साथ (उसकी आयु के चालीसवें दशक में उसकी मृत्यु हुई), जब भी मैं पास्टर के रूप में उन से मिलने जाता था, उसकी माँ हमेशा मुझ से पूछती थी, "क्या आप बता सकते हैं कि मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ?" वह इस प्रश्न को कठोरता से नहीं पूछती थी। सच में, मुझे हमेशा ही उसका प्रश्न विनम्रता से पूछा गया लगा। मैं उत्तर देता, नहीं, "मुझे नहीं पता।" और वह उस उत्तर से सन्तुष्ट हो जाती, और हम अन्य बातों के बारे में बातें करते।

उसका यह प्रश्न करना उचित था। आखिरकार, उसका हर सपना चकनाचूर हुआ था। एक अग्नि परीक्षा आई, और उससे उसका जीवन उलट-पुलट हो गया। यह तथ्य कि, उस कारण के बारे में, मैं उसे उपयुक्त उत्तर नहीं दे सका, यह स्वीकार करना था कि, “गुप्त बातें हमारे परमेश्‌वर यहोवा के वश में हैं; परन्तु जो प्रगट की गई हैं वे सदा के लिये हमारे और हमारे वंश के वश में रहेंगी, इसलिये कि इस व्यवस्था की सब बातें पूरी की जाएँ" (व्यवस्थाविवरण 29:29)।

परीक्षाएँ भिन्न प्रकार की तथा भिन्न तीव्रता की होती हैं। परन्तु वे सभी, उसका एक भाग होती हैं जिसे हम ईश्वरीय-विधान कहते हैं: कि परमेश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता है। परीक्षाएँ कभी निरुद्देश्य नहीं होती हैं। वे हमेशा परमेश्वर की आज्ञानुसार होती हैं, जिसने हम से इतना प्रेम किया कि हम पापियों को बचाने के लिये उसने हमारे स्थान पर मृत्यु सहने के लिये अपने पुत्र को भेजा। मसीही होने के नाते, हमें यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि परीक्षाएँ दिखाती हैं कि परमेश्वर अब हम से घृणा करता है। नहीं, ऐसा कभी नहीं होता है, चाहे शैतान प्रयास करे कि हम यह मानें। और वह करेगा।

दुःख उठाने का हमेशा कोई कारण होता है, चाहे हम पूरी रीति से उस कारण को समझ न भी पाएँ। अन्ततः परीक्षाएँ इसलिये आती हैं कि हम स्वयं को परमेश्वर की दया पर छोड़ दें, और उसके आलिंगन का अनुभव

करें। परीक्षाएँ हमें परिपक्व होने में सहायता करती हैं। वे हमें प्रार्थना में उसे पुकारने के लिये प्रेरित करती हैं। वे हमें दिखाती हैं कि प्रभु के बिना, हम नष्ट हो जाएँगे।

कुछ परीक्षाएँ हमारे पाप के कारण आती हैं। हम इस निष्कर्ष से बच नहीं सकते हैं। यौन विश्वासघात के कारण विवाह सम्बन्धों का टूटना और पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव आना, पाप का परिणाम है। इसके बारे में कभी गलती नहीं करें। परन्तु कुछ परीक्षाएँ रहस्यमयी होती हैं। उदाहरण के लिये, अय्यूब को ही लीजिये। वह उस बात का उदाहरण है, जिसे हम "निरपराध दुःख उठाना" कह सकते हैं। वास्तव में अय्यूब को "क्यों" का उत्तर कभी नहीं प्रदान किया गया।

मेरा अंदाज़ा है कि, यदि आप अभी इन शब्दों को पढ़ रहे हैं, तो वह इसलिये है क्योंकि आपके जीवन में कोई परीक्षा आई है, और आपको उसे समझने के लिये सहायता चाहिये। आप को किसी सलाहकार की आवश्यकता है जो आप के पास आकर, आप से बुद्धिमानी की कुछ बातें कहे। आपको एक मित्र की आवश्यकता है जो इन परेशानियों में से आप को मार्ग दिखाये कि आप इनसे अनुग्रह में बढ़ सकें। यह क्षेत्रिय मार्गदर्शिका ठीक यही करने का प्रयास है। यह आपके सारे प्रश्नों के उत्तर तो नहीं प्रदान करेगी, परन्तु मेरी आशा है कि यह आप को वह शान्ति जो "सारी समझ से परे है" (फिलिप्पियों 4:7), प्राप्त करने में सहायता करेगी, और आप को सक्षम करेगी, कि आप पीड़ा के समय में भी, परमेश्वर की आराधना — मेरा अर्थ है कि *सच्ची* आराधना — कर सकें।

1

प्रत्येक मसीही को परीक्षाओं की अपेक्षा रखनी चाहिए

पतरस ने, अपनी पहली पत्री लिखते समय, अपने पाठकों को सचेत किया कि, "जो दु: ख रूपी अग्नि तुम्हारे परखने के लिये तुम में भड़की है, इस से यह समझ कर अचम्भा न करो कि कोई अनोखी बात तुम पर बीत रही है" (1 पतरस 4:12)। प्रकट है कि उसे यह लग रहा था कि, उसके कुछ पाठकों के लिये यह बात जानना आवश्यक है। कुछ यह सोच रहे होंगे कि उद्धार पाने के बाद, जीवन एक फूलों की सेज हो जाएगा! यह विश्वास करना कठिन है कि प्रथम शताब्दी के मसीही इतने भोले थे, जबकि रोमी सम्राट यीशु के अनुयायियों को खुलकर सताने में लगे हुए थे। मसीही यह नहीं कहते थे कि "कैसर प्रभु है," जो यह मानना होता कि वह ईश्वर है। परन्तु हो सकता है कि कुछ मसीहियों ने यह सोचा था कि यदि वे चुपचाप सिर झुकाए हुए, सार्वजनिक दृष्टि से ओझल रहेंगे, तो उनका जीवन परीक्षाओं से मुक्त रहेगा। हम सभी भ्रामक विचार रखने में सक्षम होते हैं। सम्भवतः, कुछ आरम्भिक मसीहियों ने यह सोचा हो कि परीक्षाएँ पापमय व्यवहार का परिणाम हैं (और, निश्चय ही, कभी यह भी होता है)। इसलिये समाधान यही है कि भक्ति का जीवन जियें और परेशानियों से बचे रहें।

यीशु ने जो अन्तिम शब्द अपने शिष्यों से कहे थे, उनमें परेशानियों के बारे में चेतावनी भी हैं: "संसार में तुम्हें क्लेश होता है" (यूहन्ना 16:33)। परन्तु यह शिष्यों से कहा गया था, उन बारह से जो युद्ध की अग्रिम पंक्ति में थे। इसलिये, हो सकता है कि "सामान्य" मसीही परीक्षाओं से मुक्त जीवन की आशा रख सकते हैं।

गलत!

यह रोचक है कि प्रेरित पौलुस की आरंभिक सेवकाई में, उसकी पहली सेवकाई की यात्रा के बाद, उसने जीवन का एक पाठ सीख लिया था: “हमें बड़े क्लेश उठाकर परमेश्‍वर के राज्य में प्रवेश करना होगा” (प्रेरितों 14:22)। इस कथन का सन्दर्भ, दिरबे नामक एक नगर में है। उसे लुस्त्रा नामक एक नगर में पत्थरवाह करके, मृत समझ कर छोड़ दिया गया था। परन्तु वह ठीक हो गया, और रात बिताने के लिये नगर में चला गया, और अगले दिन वह दिरबे गया जहाँ "और बहुत से चेले बनाए" (प्रेरितों 14:21)। इन नये शिष्यों को पौलुस ने "बड़े क्लेशों" की चेतावनी दी। प्रत्येक मसीही को परेशानियों के लिये तैयार रहना चाहिये।

जो खण्ड हम देख चुके हैं, उनके अतिरिक्त, इन पर भी ध्यान कीजिये:

> "हे मेरे भाइयो, जब तुम नाना प्रकार की परीक्षाओं में पड़ो, तो इसको पूरे आनन्द की बात समझो" (याकूब 1:2)।
>
> "धर्मी पर बहुत सी विपत्तियाँ पड़ती तो हैं, परन्तु यहोवा उसको उन सबसे मुक्त करता है" (भजन 34:19)।
>
> "पर जितने मसीह यीशु में भक्ति के साथ जीवन बिताना चाहते हैं वे सब सताए जाएँगे" (2 तीमुथियुस 3:12)।

प्रत्येक मसीही को परीक्षाओं का सामना करने की आशा रखनी चाहिये। साथ ही बाइबल हमें यह भी बताती है कि हम एक से अधिक, भिन्न प्रकार की परीक्षाओं का सामना कर सकते हैं। पतरस "*नाना प्रकार* की परीक्षाओं" (1 पतरस 1:6, प्रमुख किया गया) की बात करता है। और याकूब अपने भाइयों को सलाह देता है कि, "जब तुम *नाना प्रकार* की परीक्षाओं में पड़ो" (याकूब 1:2, प्रमुख किया गया)। दोनों ही प्रेरितों ने उसी यूनानी शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अनुवाद "नाना प्रकार" किया गया है। यह वही शब्द है जिसका उपयोग एक बहुरंगे वस्त्र का वर्णन करने के लिये किया जा सकता है।

परीक्षाएँ विभिन्न रूप और आकारों में आती हैं। परीक्षाएँ शारीरिक होती हैं। कैंसर, नसों के रोग, अन्धापन, या वृद्धावस्था के कारण होने वाले दर्द और तकलीफों का विचार कीजिये। मानसिक परीक्षाएँ भी होती हैं। खुले स्थानों का डर, हताशा, या चोट लग कर घायल होने का तनाव (पीटीएसडी) के बारे में सोचिये। और फिर आत्मिक परीक्षाएँ होती हैं, उदाहरण के लिये, आश्वस्त न रहना, या वे समय जब शैतान आप पर हमले कर रहा हो (जिसे पौलुस "बुरे दिन" [इफिसियों 6:13] कहता है)।

न केवल हमें विभिन्न *प्रकार* की परीक्षाओं की अपेक्षा रखनी चाहिये, बल्कि जिन परीक्षाओं का हम सामने करेंगे, उनके *स्तर* भी भिन्न हो सकते हैं। दोनों स्तिफनुस और याकूब (यूहन्ना का भाई और बारहों में से एक), कलीसिया के आरम्भिक दिनों में ही मार डाले गये थे (प्रेरितों 7:60; 12:2)। अन्य, दानिय्येल के सिंहों की माँद में होने के समान, उसी प्रकार के जोखिम का सामना करेंगे, परन्तु सुरक्षित बच निकलेंगे (दानिय्येल 6:16-23)। किसी को अपने जीवन में एक या दो बड़ी परीक्षाओं का सामना करना पड़ेगा, और अन्य, निरन्तर, कभी कम न होने वाली परीक्षाओं का सामना करते रहेंगे।

परमेश्वर को पता है कि हम क्या कुछ सह सकते हैं, और बाइबल प्रतिज्ञा देती है कि उसे हमारी क्षमता पता है: "तुम किसी ऐसी परीक्षा में नहीं पड़े, जो मनुष्य के सहने से बाहर है। परमेश्वर सच्चा है और वह तुम्हें सामर्थ्य

से बाहर परीक्षा में न पड़ने देगा, वरन् परीक्षा के साथ निकास भी करेगा कि तुम सह सको" (1 कुरिन्थियों 10:13)।

परीक्षाएँ आवश्यक क्यों हैं?

यह आवश्यक क्यों है कि मसीहियों को परीक्षाओं का अनुभव करना पड़े? इसके अनेकों उत्तर हैं, और कुछ तो केवल परमेश्वर को ही पता हैं। मैं आप को सात कारण सुझाता हूँ:

I. शैतान का अस्तित्व है। वह कितना क्रूर और द्वेषपूर्ण है, इसकी कल्पना भी करना कठिन है। उसे हर उस बात से बैर है जो परमेश्वर करता है, उनसे भी जिन्हें परमेश्वर बचा लेता है और अपनी संतान कहता है। पौलुस इफिसियों 6 हमें एक बड़ी स्पष्ट चेतावनी देता है: "क्योंकि हमारा यह मल्लयुद्ध लहू और मांस से नहीं परन्तु प्रधानों से, और अधिकारियों से, और इस संसार के अन्धकार के हाकिमों से और उस दुष्टता की आत्मिक सेनाओं से है जो आकाश में हैं" (इफिसियों 6:12)।

II. हम एक पतित संसार में रहते हैं। हम अदन की वाटिका में नहीं हैं। यद्यपि मृत्यु होने के बाद हमें स्वर्ग की प्रतिज्ञा दी गई है, परन्तु यह वास्तविकता अभी हमारी नहीं है। बुराई हमारे चारों ओर है, और बहुधा हमारे अन्दर भी। सृष्टि कराहती है क्योंकि जो उसे होना चाहिये, वह अभी वैसी नहीं है: "क्योंकि हम जानते हैं कि सारी सृष्टि अब तक मिल कर कराहती और पीड़ाओं में पड़ी तड़पती है" (रोमियों 8:22)। हम जिन परीक्षाओं को अनुभव करते हैं, वे बिगड़े हुए संसार में रहने का परिणाम हैं।

III. संसार में बुराई है, परन्तु बुराई हमारे मनों में भी है। मसीही होने के कारण, जैसा ईश-विज्ञानी कभी-कभी व्यक्त करते हैं, हम *अभी* और *अभी तक नहीं* के मध्य के तनाव में रहते हैं। हम छुड़ा लिये गये हैं। हम परमेश्वर की सन्तान हैं। पौलुस कुलुस्से के विश्वासियों को लिखते समय उन्हें "पवित्र" (कुलुस्सियों 1:2) कहता है। परन्तु हम अभी तक स्वर्ग में नहीं हैं। हमारे पास नये मन, नयी इच्छाएँ, और नये अनुराग हैं, परन्तु हम अभी तक समस्त भ्रष्टता से मुक्त नहीं हुए हैं। पौलुस इस तनाव को इस प्रकार से व्यक्त करता है: "क्योंकि जिस अच्छे काम की मैं इच्छा करता हूँ, वह तो नहीं करता, परन्तु जिस बुराई की इच्छा नहीं करता, वही किया करता हूँ" (रोमियों 7:19)। पाप हम पर प्रभुता तो नहीं करता है, परन्तु वह पूर्णतः ओझल भी नहीं हो गया है। क्योंकि हम अभी भी *अभी तक नहीं* में ही हैं, इसलिये परीक्षाएँ हम पर आती हैं।

IV. बाइबल यह स्पष्ट करती है कि परीक्षाओं का परिणाम अच्छे फल होता है। पौलुस इसे यूँ कहता है: "केवल यही नहीं, वरन् हम क्लेशों में भी घमण्ड करें, यह जानकर कि क्लेश से धीरज, और धीरज से खरा निकलना, और खरे निकलने से आशा उत्पन्न होती है; और आशा से लज्जा नहीं होती, क्योंकि पवित्र आत्मा

जो हमें दिया गया है उसके द्वारा परमेश्वर का प्रेम हमारे मन में डाला गया है" (रोमियों 5:3-5)। परीक्षा का सामना करने के लिए बाध्य होने से धीरज और सहनशीलता उत्पन्न होते हैं। ऐसे लोग, जिन्हें सुरक्षित और लाड़-प्यार से रखा गया है, उनमें कठिनाइयों का सामना कर पाने की क्षमता होने की सम्भावना बहुत कम होती है। उनके अन्दर परेशानियों के समयों में भी आगे ही बढ़ते रहने क्षमता होगी ही नहीं। पौलुस कहता है कि धीरज से *खरा निकलना* उत्पन्न होता है। वह परखे जाने और बचे रहने के गुण की बात कर रहा है। परमेश्वर को ऐसी कोई वस्तु बनाने में कोई रुचि नहीं है जो चिर-स्थाई न हो। सही परिणाम लाने के लिये कई चोटों का सामना करने की आवश्यकता हो सकती है। और इसके बाद पौलुस कहता है कि परीक्षाओं का लक्ष्य आशा — महिमा की आशा है। याकूब, अपनी पत्री के आरम्भ में ऐसी ही बात कहता है: "यह जानकर कि तुम्हारे विश्वास के परखे जाने से धीरज उत्पन्न होता है। पर धीरज को अपना पूरा काम करने दो कि तुम पूरे और सिद्ध हो जाओ, और तुम में किसी बात की घटी न रहे" (याकूब 1:3-4)।

V. परीक्षाओं में हम प्रार्थना में परमेश्वर को पुकारते हैं (यह करना तो चाहिये)। परीक्षाओं का कारण परमेश्वर का यह विधान भी हो सकता है कि हम एहसास करें कि हमें उसके अनुग्रह पर और कितना अधिक निर्भर रहना चाहिये। अपनी दुर्बलताओं में हम उसे पुकारने के लिये बाध्य हो जाते हैं। जब पौलुस ने अपने शरीर में काँटा अनुभव किया, उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी कि उसे हटा दिया जाए। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। बल्कि परमेश्वर ने उसे बने रहने दिया, और साथ ही कहा कि, “मेरा अनुग्रह तेरे लिये बहुत है; क्योंकि मेरी सामर्थ्य निर्बलता में सिद्ध होती है” (2 कुरिन्थियों 12:9)। याकूब के समान, पौलुस को भी अनन्त जीवन के संकरे मार्ग पर लँगड़ाते हुए चलना पड़ा, यह जानते हुए कि हर कदम पर प्रभु उसके साथ था।

VI. कुछ परीक्षाएँ परमेश्वर की अनुशासनात्मक कार्यवाही होती हैं। कभी-कभी परीक्षाएँ हमारे पापी व्यवहार का परिणाम होती हैं। ऐसी परीक्षाएँ हमें हमारी वास्तविक दशा के प्रति सचेत करने, किसी पापमय व्यवहार के लिये पश्चाताप करने, और अपनी पूरी सामर्थ्य से प्रभु के खोजी होने के लिये तैयार की गई होती हैं। इब्रानियों का लेखक कहता है कि यह अनुशासन प्रमाण है कि हम परमेश्वर की लेपालक सन्तान हैं: "यदि वह ताड़ना जिसके भागी सब होते हैं, तुम्हारी नहीं हुई तो तुम पुत्र नहीं, पर व्यभिचार की सन्तान ठहरे। फिर जब कि हमारे शारीरिक पिता भी हमारी ताड़ना किया करते थे और हमने उनका आदर किया, तो क्या आत्माओं के पिता के और भी अधीन न रहें जिससे हम जीवित रहें। वे तो अपनी–अपनी समझ के अनुसार थोड़े दिनों के लिये ताड़ना करते थे, पर वह तो हमारे लाभ के लिये करता है, कि हम भी उसकी पवित्रता के भागी हो जाएँ। वर्तमान में हर प्रकार की ताड़ना आनन्द की नहीं, पर शोक ही की बात दिखाई पड़ती है; तौभी जो उसको सहते–सहते पक्के हो गए हैं, बाद में उन्हें चैन के साथ धर्म का प्रतिफल मिलता है" (इब्रानियों 12:8-11)।

VII. पौलुस यह स्पष्ट करता है कि हमारी अग्नि परीक्षा हमें यीशु की समानता में ढालने का परमेश्वर का तरीका है। परीक्षाएँ हमें भक्ति की प्रतिक्रिया देने के लिये उकसाती हैं। अवश्य ही, यह हमेशा तो नहीं होता है। यह सम्भव है कि हम उनके प्रति ढीठ हों, उन्हें तुच्छ समझें, और उनकी अवहेलना करें। परन्तु यदि हम परीक्षाओं को स्वीकार कर लेते हैं, तो अँधकार में से बहुत बड़ी भलाई आ सकती है। पौलुस ने यह कहा है: "अत: जब हम विश्वास से धर्मी ठहरे, तो अपने प्रभु यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर के साथ मेल रखें, जिसके द्वारा विश्वास के कारण उस अनुग्रह तक जिसमें हम बने हैं, हमारी पहुँच भी हुई, और परमेश्वर की महिमा की आशा पर घमण्ड करें। केवल यही नहीं, वरन् हम क्लेशों में भी घमण्ड करें, यह जानकर कि क्लेश से धीरज, और धीरज से खरा निकलना, और खरे निकलने से आशा उत्पन्न होती है; और आशा से लज्जा नहीं होती, क्योंकि पवित्र आत्मा जो हमें दिया गया है उसके द्वारा परमेश्वर का प्रेम हमारे मन में डाला गया है" (रोमियों 5:1-5)।

इस खण्ड में रोचक बात यह है कि यहाँ पर क्लेश उठाने का उल्लेख परमेश्वर के सामने धर्मी ठहराए जाने के तुरन्त बाद किया गया है। ऐसा लगता है कि वह हमें बताना चाहता है कि धर्मी ठहराए गये मसीही, जिनका परमेश्वर के साथ मेल, व्यवस्था के कार्यों के बिना, केवल मसीह में विश्वास लाने के द्वारा हुआ है, उन्हें *किसी-न-किसी तरह से क्लेश उठाने ही पड़ेंगे*। यह कहने के बाद कि धर्मी ठहराए जाने का एक परिणाम परमेश्वर की महिमा का एक पूर्वाभास भी है, वह तुरन्त ही हमें नीचे इस वास्तविकता में ले आता है कि हम अभी भी इस संसार में ही हैं, और अभी हमें बहुत से शेष पाप के साथ भी व्यवहार करना है।

धीरज। क्लेश उठाने से (उन भक्त जनों में जो परमेश्वर के विधान के प्रति समर्पित होने की प्रतिक्रिया देते हैं) धीरज उत्पन्न होता है, अर्थात स्थिति में *बने रहना*। जिन्होंने परीक्षाओं का सामना नहीं किया, उनकी आत्मिक मांसपेशियाँ ढीली और दुर्बल होती हैं। परीक्षाओं से वह आंतरिक बल आता है जो विश्वासी को आगे बढ़ते ही रहने के लिये सक्षम करता है।

खरा निकालना। धीरज से खरा निकलना उत्पन्न होता है। यह सबसे प्रत्यक्ष स्तर पर सत्य है। जो लोग कठिनाइयों से होकर निकले हैं, बहुधा उनमें आत्मिक दृढ़ता भी होती है। यह परखे जाने और उससे और भी अधिक शक्तिशाली होकर निकलने का गुण है। यदि किसी वस्तु को परख कर जाँच लिया जाता है, तो यह प्रमाणित हो जाता है कि वह *असली* है। एक कारीगर उसे जाँचता है। वह चाहता है कि वस्तु बनी रहे। उसकी रुचि सस्ती नकली वस्तुएँ बनाने में नहीं है, वरन् असली में है, ऐसी वस्तु जो सह कर दृढ़ बनी रहे। परमेश्वर भी कुछ — *किसी को* — बनाना चाहता है, जो हमेशा तक बना रहे।

आशा। परमेश्वर की महिमा की आशा। हमारे जीवनों में परमेश्वर जो भी करता है, वह इस बात का चिन्ह है कि उसने आप में जो कुछ भी करना आरम्भ किया है, वह उसे महिमा में पूर्ण करेगा। यदि वह आपके

स्वरूप को सुधारना नहीं चाहता, तो वह आप को अकेला छोड़ देता। अय्यूब 23:10: "परन्तु वह जानता है कि मैं कैसी चाल चला हूँ; और जब वह मुझे ता लेगा तब मैं सोने के समान निकलूँगा" के बारे में सोचिये।

परीक्षाएँ हमें यीशु की समानता में बढ़ाती हैं। क्लेश नाश कर सकते हैं। या फिर, वे परिवर्तित कर सकते हैं। यह तभी हो पाता है जब हम देखते हैं कि परमेश्वर की प्राथमिकताएँ, हमारी प्राथमिकताओं से भिन्न हैं। उसकी रुचि दीर्घकालीन और बने रहने में है, अल्पकालीन में नहीं।

और कभी, किसी विशिष्ट परीक्षा का कारण केवल परमेश्वर को ही पता होता है। हर क्लेश ताड़ना देना नहीं होता है। बाइबल "निरपराध के क्लेश उठाने" को जानती है। हम इसके बारे में बाद में बात करेंगे, परन्तु अय्यूब की पुस्तक किसी भी समय के सबसे धर्मी व्यक्तियों में से एक की भयानक परीक्षाओं का उदाहरण प्रदान करती है। परमेश्वर के प्रत्येक विधान की चीर-फाड़ करके उसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। हमारे जीवनों में परमेश्वर के कार्यों में एक रहस्य है। कभी-कभी, प्रश्न "क्यों?" का सीधा उत्तर होता है, "मुझे नहीं पता।" परन्तु हम चाहे उत्तर जानने नहीं पाते हैं, परन्तु फिर भी मसीह में होकर परमेश्वर का प्रेम हमेशा ही निश्चित और पक्का है।

चर्चा एवं मनन:

1. क्या ऊपर दिये गये कारणों में से किसी कारण ने आप को चकित किया या चुनौती दी?
2. क्या आप को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, उसके बारे में इनसे कोई बात पता चली?

2
अध्ययन सामग्री

परीक्षाओं के कारणों को बेहतर समझने के लिये, हम पवित्रशास्त्र में पाये जाने वाले तीन उदाहरणों को लेंगे: यूसुफ, अय्यूब, और पौलुस।

यूसुफ

यूसुफ के क्लेशों का विस्तृत वर्णन हमें उत्पत्ति 37, 39-50 में मिलता है। उत्पत्ति की पुस्तक का लगभग एक चौथाई भाग, उसे समर्पित है। आरम्भ तब होता है जब यूसुफ सत्रह वर्ष का है। उसके पिता याकूब ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह उसके भाइयों की अपेक्षा, यूसुफ को अधिक पसन्द करता था, और उसने उसके लिये "एक रंगबिरंगा अंगरखा बनवाया" (उत्पत्ति 37:3)। और जब यूसुफ के भाइयों ने अपने पिता के द्वारा यूसुफ को अधिक पसन्द किये जाने को देखा, "तब वे उससे बैर करने लगे और उसके साथ ठीक से बात भी नहीं करते थे" (उत्पत्ति 37:4)। जब यूसुफ ने स्वप्न देखने आरम्भ किये, जिनमें वह अपने पिता और भाइयों से भी अधिक महान हो गया था, वे उससे ईर्ष्या करने लगे।

एक दिन जब भाई एक दूर स्थान पर भेड़ें चरा रहे थे, याकूब ने उनकी खोज-खबर लेने के लिये यूसुफ को भेजा, परन्तु जब वह आया, तो भाइयों ने उसे मार डालने का षड्यन्त्र बनाया। उसे मार डालने के स्थान पर उन्होंने उसे मिदियानियों के एक समूह को, दास के रूप में बेच दिया, और यूसुफ ने स्वयं को पोतीपर, जो "फ़िरौन के एक हाकिम और अंगरक्षकों के प्रधान" (उत्पत्ति 37:36) था, के घर में पाया।

इस पूरे समय परमेश्वर का हाथ यूसुफ पर था: "और यहोवा उसके संग था; सो वह भाग्यवान पुरूष हो गया" (उत्पत्ति 39:2)। पोतीपर ने यूसुफ को "अपने घर का अधिकारी बना के अपना सब कुछ उसके हाथ में सौंप दिया" (उत्पत्ति 39:4)। परन्तु इसके बाद परीक्षाएँ आईं, जब यूसुफ ने पोतीपर की पत्नी द्वारा उसके साथ व्यभिचार की इच्छा को स्वीकार नहीं किया, और उसे बन्दीगृह में डाल दिया गया।

फिरौन के पिलानेहारे और प्रधान पकानेहारे भी उसी बन्दीगृह में डाले गये जहाँ यूसुफ था, और यूसुफ ने उनके स्वप्नों के अर्थ बताने की अपनी योग्यता का परिचय दिया। बाद में जब पिलानेहारे को महल में फिर से बहाल कर दिया गया (पकानेहारे को मार डाला गया), फिरौन ने स्वप्न देखे और पूछा कि क्या कोई उसे उनका अर्थ

बता सकता है? तब अचानक ही पिलानेहारे को याद आता है कि यूसुफ में यह योग्यता है, और उसे फिरौन के सामने लाया जाता है।

कहानी की परतें खुलती चली जाती हैं। यूसुफ स्वयं को मिस्री फिरौन की कृपादृष्टि का पात्र पाता है, और मिस्र में दूसरा सबसे शक्तिशाली व्यक्ति, और सात वर्ष की बहुतायत तथा साथ वर्ष के काल के समय में अन्न का प्रावधान करने का प्रधान अधिकारी, बन जाता है

याकूब, जिसे लहू से सना हुआ यूसुफ का अँगरखा दिखाया गया था, ने भाइयों की कहानी को मान लिया था कि लड़का मर गया है। कई वर्षों के बाद जब याकूब अपने पुत्रों को अन्न खरीदने के लिये मिस्र भेजता है, और अन्ततः यूसुफ स्वयं को उन पर और बाद में याकूब पर प्रकट करता है। एक महत्वपूर्ण पल में, यूसुफ अपने भाइयों से कहता है कि: "यद्यपि तुम लोगों ने मेरे लिये बुराई का विचार किया था; परन्तु परमेश्वर ने उसी बात में भलाई का विचार किया" (उत्पत्ति 50:20)।

वृतान्त कभी ऐसा कोई संकेत नहीं देता है कि यूसुफ की परीक्षाएँ उसके किये का परिणाम थीं। यह स्पष्ट है कि उनकी ईर्ष्या, क्रोध, और पिता के पक्षपात के कारण, दोष यूसुफ के भाइयों का था। और याकूब भी दोषी है क्योंकि उसने अपने अन्य पुत्रों की अपेक्षा यूसुफ पर अधिक कृपा रखी। परन्तु उत्पत्ति 50:20 बात के इससे भी कुछ अधिक जटिल के होने का संकेत करता है। यह भाव तो है कि दोष यूसुफ के भाइयों का था, और एक अतिरिक्त भाव यह भी है कि यूसुफ की परीक्षाओं का कारण परमेश्वर के हाथों में था। परमेश्वर निष्प्रभाव, संचालित, और विधानों को ऐसे कार्यकारी होने की आज्ञा देता है कि अपने भाइयों के पापमय व्यवहार के कारण यूसुफ को दुःख उठाना पड़ता है, परन्तु, परमेश्वर उस पाप का *जनक* नहीं है जिससे यूसुफ को दुःख हुआ। परमेश्वर प्रभुता सम्पन्न है और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिनमें पाप सम्भव है, परन्तु वह पाप को उत्पन्न नहीं करता है।

अन्तिम वाक्य को समझना कठिन है। हम इसे इस प्रकार से चित्रित कर सकते हैं: एक व्यक्ति ऐसा उपन्यास लिख सकता है जिसमें एक हत्या होती है, परन्तु वह हत्यारा नहीं है। इसी प्रकार से, परमेश्वर इस तरह से शासन करता है कि उसकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है, परन्तु वह उस पाप को नहीं करता है जिसके कारण दुःख हुआ। वह पाप को होने तो देता है, परन्तु पाप को उत्पन्न नहीं करता है।

यूसुफ का जीवन चित्रित करता है कि किस प्रकार से परमेश्वर औरों के पापमय आचरण के द्वारा, किसी कारण के लिये, परीक्षाओं को हो लेने देता है। और यूसुफ के लिये, वह कारण था, यह सुनिश्चित करना कि याकूब का वंश और जो वाचाएँ परमेश्वर ने उसके दादा अब्राहम से बाँधी थीं, वे सुरक्षित बनी रहें। यदि यूसुफ की परीक्षा नहीं होती, तो अब्राहम की वंशावली का अन्त हो जाता, और छुटकारे की योजना समाप्त हो जाती। यूसुफ ऐसी परीक्षा का उदाहरण है जिसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है। परन्तु ये कारण उस तथ्य के *घटित हो जाने के बाद* ही

प्रकट हुए। यूसुफ जब बन्दीगृह में था, तब ये कारण प्रकट नहीं थे। जैसा कि मसीही विशुद्धतावादी समुदाय के जॉन फलावेल ने लिखा, "परमेश्वर के विधान इब्रानी शब्दों के समान हैं—उन्हें केवल उलटी दिशा में ही पढ़ा जा सकता है।"

परन्तु कभी-कभी क्लेशों के कारणों का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं मिलता है। यही बात अय्यूब के साथ है।

अय्यूब

भविष्यद्वक्ता यहेजकेल अय्यूब का उल्लेख दानिय्येल और नूह के साथ धर्मी व्यक्तियों में करता है, जो यह संकेत करता है कि अय्यूब कोई काल्पनिक नहीं, एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। इब्रानी कुलपिताओं के समान अय्यूब 100 वर्ष से भी अधिक तक जीवित रहा (अय्यूब 42:16)। सबा के लोगों, और कसदियों के द्वारा लूटे जाने का उल्लेख संकेत करता है कि अय्यूब का जीवनकाल सम्भवतः दूसरी सहस्त्र-शताब्दी में था, सम्भवतः अब्राहम या मूसा के समय में।

अय्यूब की पुस्तक का आरम्भ एक प्रस्तावना के साथ होता है, जो हमें अय्यूब की पत्नी (अय्यूब 2:9) और उनके दस सन्तानों (सात पुत्र और तीन पुत्रियाँ [अय्यूब 1:2]) के बारे में बताता है। हम उसके धर्मी होने के बारे में भी सीखते हैं, जिसका तीन बार उल्लेख किया गया है, एक बार लेखक के द्वारा (अय्यूब 1:1) और दो बार स्वयं परमेश्वर के द्वारा (अय्यूब 1:8; 2:3): "क्या तू ने मेरे दास अय्यूब पर ध्यान दिया है कि पृथ्वी पर उसके तुल्य खरा और सीधा और मेरा भय मानने वाला और बुराई से दूर रहने वाला मनुष्य और कोई नहीं है" (अय्यूब 2:3)। अपने बच्चों के लिये याजक का कार्य करते हुए, अय्यूब को डर था कि उनके जन्मदिन के उत्सव मनाने के कारण, उसकी प्रत्येक सन्तान के लिये होमबलि चढ़ाने की आवश्यकता होगी (अय्यूब 1:4-5)।

पहले अध्याय में बहुत बड़ी परीक्षा के दो वृतान्त दिए गए हैं: पहला जब सबा के (अय्यूब 1:15) और कसदी (अय्यूब 1:17) लुटेरे आक्रमण करके उसके सारे पशुओं (अर्थात, उसकी सम्पत्ति) को लूट ले जाते हैं, और फिर एक "बड़ी प्रचण्ड वायु" (अय्यूब 1:19) उसकी दसों सन्तानों को मार डालती है। तुरन्त ही अय्यूब की प्रतिक्रिया विश्वास रखने की होती है: "मैं अपनी माँ के पेट से नंगा निकला और वहीं नंगा लौट जाऊँगा; यहोवा ने दिया और यहोवा ही ने लिया; यहोवा का नाम धन्य है" (अय्यूब 1:21)।

अध्याय 2 में, अय्यूब पर एक अन्य परीक्षा आ पड़ती है, जब वह एक भयानक बीमारी से त्रस्त हो जाता है, जिसका वर्णन "अय्यूब को पाँव के तलवे से ले सिर की चोटी तक बड़े बड़े फोड़ों से पीड़ित किया" (अय्यूब 2:7) दिया गया है। जब उसकी पत्नी उससे कहती है कि, "परमेश्वर की निन्दा कर, और चाहे मर जाए तो मर जा" (अय्यूब 2:9) — जो कि अविश्वास और मूर्खता की सलाह है — तो अय्यूब फिर से विश्वास के साथ प्रतिक्रिया देता है: "क्या हम जो परमेश्‍वर के हाथ से सुख लेते हैं, दुः ख न लें?" (अय्यूब 2:10)। लेखक यह स्पष्ट कर

देता है कि अय्यूब की परीक्षाओं का कारण अय्यूब द्वारा कोई पाप करना नहीं था: "इन सब बातों में भी अय्यूब ने अपने मुँह से कोई पाप नहीं किया" (अय्यूब 2:10)।

अय्यूब को जो बात पता नहीं है, और हमें जिसे अलग से बताया गया है, वह यह है कि, पृथ्वी पर चल रही इन परीक्षाओं के पीछे, भलाई और बुराई, परमेश्वर और शैतान के मध्य, एक अलौकिक संघर्ष चल रहा है (अय्यूब 1:6–9, 12; 2:1–4, 6–7)। शैतान का दावा है कि क्योंकि अय्यूब ने कभी परीक्षाओं का सामना नहीं किया है, केवल इसी लिये वह धर्मी बना हुआ है। शैतान परमेश्वर से कहता है, कि यदि अय्यूब को भी परीक्षाओं के द्वारा परखा जाए, तो उसका विश्वास भी जाता रहेगा और "तब वह तेरे मुंह पर तेरी निन्दा करेगा" (अय्यूब 1:11; 2:5)।

एक दृष्टिकोण से तो अय्यूब के क्लेशों का कारण शैतान है। परन्तु पुस्तक का लेखक चाहता है कि हम यह भी समझें कि, यद्यपि यह सत्य है, किन्तु एकमात्र कारण नहीं है। इसे समझना कठिन तो है, परन्तु लेखक चाहता है कि हम इस बात को समझ लें कि अय्यूब के क्लेशों का मूलभूत कारण परमेश्वर की प्रभुता में निहित है। एक ऐसे दिन में, जब स्वर्गदूतों को अपना हिसाब देना होता है, शैतान को भी अपना हिसाब देने के लिये बुलाया जाता है (अय्यूब 1:6; 2:1)। और, यह शैतान का नहीं, परमेश्वर का सुझाव था कि अय्यूब शैतान का लक्ष्य बने: “क्या तू ने मेरे दास अय्यूब पर ध्यान दिया है[?]” (अय्यूब 1:8; 2:3)। हमें कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि किस प्रकार से परमेश्वर पूर्ण रीति से प्रभुता सम्पन्न है तथा पाप का जनक नहीं है, यद्यपि यह नैतिक प्रश्न पूरी पुस्तक पर बना रहता है।

विश्वास की एक आरम्भिक प्रतिक्रिया के बाद, हमारा परिचय अय्यूब के तीन "मित्रों" से करवाया जाता है: तेमानी एलीपज, और शूही बिलदद, और नामाती सोपर (अय्यूब 2:11)। इससे पहले कि वे अपनी राय दें, अय्यूब हताशा की गहराइयों में जाता है, इच्छा व्यक्त करता है कि वह कभी जन्मा ही नहीं होता — निराशा से भरे शब्द जिन्हें यिर्मयाह भी अपनी परीक्षा में दोहराता है (अय्यूब 3:1–26; यिर्मयाह 20:7–18)।

अय्यूब के मित्रों की केवल एक ही राय है: अय्यूब के क्लेशों का मूल कारण, केवल उसके पाप ही हैं, और उसे उन से पश्चाताप करने की आवश्यकता है। इसका सारांश एलीपज के आरम्भिक शब्दों में कहा जा सकता है, जो उसे किसी गुप्त स्रोत से मिले थे:

> क्या नाशमान मनुष्य ईश्वर से अधिक न्यायी होगा? क्या मनुष्य
> अपने सृजनहार से अधिक पवित्र हो सकता है? देख, वह
> अपने सेवकों पर भरोसा नहीं रखता, और अपने स्वर्गदूतों को
> मूर्ख ठहराता है;

फिर जो मिट्टी के घरों में रहते हैं, और जिनकी नेव मिट्टी में डाली गई है, और जो पतंगे की नाईं पिस जाते हैं, उनकी क्या गणना (अय्युब 4:17-19)।

दूसरे शब्दों में, क्लेश, हमारे पापों के लिये, परमेश्वर द्वारा दिया गया दण्ड है। यह गलती करने के लिये, तुरन्त दिया गया प्रतिफल है।

बाद में, पुस्तक में, हम एक अन्य मित्र, बूजी बारकेल का पुत्र एलीहू से मिलते हैं, और "अय्यूब पर उसका क्रोध इसलिये भड़क उठा, कि उसने परमेश्वर को नहीं, अपने ही को निर्दोष ठहराया" (अय्यूब 32:2)। टीकाकारों में इसे लेकर भिन्न विचार हैं कि क्या एलीहू ने कुछ और भी जोड़ा, या उसने केवल अय्यूब के तीन मित्रों के तुरन्त दण्डात्मक प्रतिफल की बात को ही दोहराया। ऐसा प्रतीत होता है कि, कम से कम आरम्भ में, कि एलीहू सुझाव देता है कि अपने क्लेशों से, अय्यूब अपने बारे में कुछ ऐसा सीख सकता है, जिसे वह अन्यथा नहीं सीख पाता, परन्तु यह भी लगता है कि, आगे बढ़ते हुए, वह भी, तुरन्त दण्डात्मक प्रतिफल की बात में पड़ जाता है।

अय्यूब तीन बार एक ऐसे जन की बात कहता है जो उसके निर्दोष होने को समझता है, वह एक "बिचवई," एक "साक्षी," और, (यद्यपि गलत व्याख्या के कारण) सुप्रसिद्ध "छुड़ाने वाला" है (अय्यूब 9:33; 16:19; 19:25)। इनमें से प्रत्येक के लिये अय्यूब किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं ढूँढ़ रहा है जो उसे क्षमा कर दे, बल्कि उसे, जो उसके मुकद्दमे के सही होने (उसके निर्दोष होने के आधार पर) की पैरवी करे। यह नहीं कि अय्यूब निष्पाप है; बल्कि यह कि, उसके क्लेशों का कारण उसका पाप नहीं है, यद्यपि उसके मित्र (और एलीहू) इसी पर ज़ोर दे रहे थे।

आरम्भिक दो अध्यायों में, अय्यूब ने परमेश्वर की वाणी को नहीं सुना था, और यह अध्याय 38 में पहुँचकर ही होता है कि परमेश्वर अय्यूब को अपना हिसाब देने के लिये कहता है। अय्यूब “अज्ञानता की बातें” (अय्यूब 38:2) कहता आया था। बजाए इसके कि अय्यूब प्रश्न पूछता, और परमेश्वर उत्तर प्रदान करता। परमेश्वर पासा पलट देता है, और साथ से भी अधिक प्रश्न पूछता है, और अय्यूब उनमें से किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता है। एक प्रमुख बिन्दु पर, परमेश्वर पूछता है: “क्या जो बकवास करता है वह सर्वशक्तिमान से झगड़ा करे? जो परमेश्वर से विवाद करता है वह इसका उत्तर दे।” (अय्यूब 40:2)। इस पर, अय्यूब अपने मुँह पर हाथ रख लेता है। परन्तु अभी परमेश्वर की बात पूरी नहीं हुई है, और उसका प्रश्न पूछना ज़ारी रहता है। एक समय पर परमेश्वर धरती के एक प्राणी “जलगज” (अय्यूब 40:15), और एक समुद्री प्राणी “लिब्यातान” (अय्यूब 41:1) का उल्लेख करता है। टीकाकारों में इसे लेकर सहमति नहीं है, परन्तु यह तर्क दिया जा सकता है कि यह हाथी और मगरमच्छ के आलंकारिक वर्णन हैं। परमेश्वर ने उन्हें क्यों उत्पन्न किया? उत्तर उसी एक ही स्तर का है, “मुझे नहीं पता।” और पीड़ा की समस्या भी वैसी ही है। ऐसा क्यों कि एक को दुःख सहना पड़ता है, जबकि दूसरे को नहीं? हम नहीं जानते हैं। परन्तु एक उत्तर और भी है, वह जिसे अय्यूब देता है:

> मैं ने कानों से तेरा समाचार सुना था, परन्तु अब मेरी आँखें तुझे
> देखती हैं; इसलिये मुझे अपने ऊपर घृणा आती है,
>
> और मैं धूल और राख में पश्चाताप करता हूँ। (अय्यूब 42:5-6)

महत्वपूर्ण यह नहीं है कि अय्यूब अपने दुःख उठाने के *कारण* को समझ ले — वह तो परमेश्वर के रहस्यमय और अथाह उद्देश्यों में कहीं है। केवल इतना ही आवश्यक है कि अय्यूब उस पर भरोसा रखे, जैसा कि उसने आरम्भ में रखा था।

अय्यूब की पुस्तक का अन्त, अय्यूब द्वारा उसके तीन मित्रों के लिये प्रार्थना करने के साथ होता है (अय्यूब 42:8)। एलीहू के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। हमें यह भी बताया गया है कि उसके भाइयों और बहनों ने उसे सांत्वना दी (अय्यूब 42:11), उसकी सम्पत्ति बहाल कर दी गई (अय्यूब 42:12), और उसके दस अन्य बच्चे हुए, सात पुत्र और तीन पुत्रियाँ (अय्यूब 42:13), और वह 140 वर्ष की आयु तक जीवित रहा (अय्यूब 42:16)।

अय्यूब *निरपराध रीति से* दुःख उठाने का एक उदाहरण है। अय्यूब के दुःख उठाने का, अय्यूब के पापी होने से कोई सम्बन्ध नहीं था। हम शैतान को इसके लिये दोषी ठहरा सकते हैं, परन्तु यह कारण को पूर्णतः नहीं बता पाता है। शैतान के ध्यान को, अय्यूब की ओर परमेश्वर लेकर आया था। क्यों? हमें नहीं बताया गया है। और न ही अय्यूब को बताया गया है। उसे केवल इस विश्वास के साथ जीवित रहना था कि परमेश्वर को कारण के बारे में पता है।

पौलुस

पौलुस ने अनेकों तरीकों से दुःख उठाया था, परन्तु उसने केवल एक ही परीक्षा, जिसे उसने "शरीर में एक काँटा चुभाया गया" (2 कुरिन्थियों 12:7) कहा, की ओर ही ध्यान विशेष रीति से आकर्षित किया है। यह "तीसरे स्वर्ग" (2 कुरिन्थियों 12:2) या "स्वर्ग लोक" (2 कुरिन्थियों 12:4) का अनुभव मिलने के बाद हुआ। बजाए इसके, कि वह अपनी ओर ध्यान आकर्षित करे, वह तृतीया या अन्य पुरुष की शैली को प्रयोग करता है, "मैं एक मनुष्य को जानता हूँ" (2 कुरिन्थियों 12:2)। इसके अतिरिक्त, पौलुस को इस घटना के बारे में बात करने के लिये, कोई शीघ्रता नहीं थी, क्योंकि इस घटना को हुए "चौदह वर्ष" (2 कुरिन्थियों 12:2) हो चुके थे। कुरिन्थुस के बड़े-प्रेरितों को अपना बखान करना पसन्द था, परन्तु पौलुस प्रेरित को नहीं (2 कुरिन्थियों 11:5)। न ही वह हमें बताता है कि उसने क्या देखा या सुना, यद्यपि वह स्तब्ध कर देने वाला रहा होगा।

पौलुस जो हमें बताता है, वह यह है कि यह अनुभव सरलता से घमण्ड उत्पन्न कर सकता था। वह बहुत आसानी से अपने स्तर को औरों से बढ़कर दिखा सकता था: "इसलिये कि मैं प्रकाशनों की बहुतायत से फूल न जाऊँ,

मेरे शरीर में एक काँटा चुभाया गया, अर्थात् शैतान का एक दूत कि मुझे घूँसे मारे ताकि मैं फूल न जाऊँ" (2 कुरिन्थियों 12:7)। विशेषाधिकार से घमण्ड उत्पन्न हो सकता है।

जैसा अय्यूब के साथ था, परीक्षा का एक कारण, एक स्तर पर शैतान है। परन्तु शैतान, ईश्वरीय अनुमति के बिना कुछ नहीं कर सकता है। चाहे उसके लोगों के साथ बुरी बातें भी हों, परन्तु बात हमेशा ही परमेश्वर की अधीनता में ही रहती है। परमेश्वर के ईश्वरीय नियन्त्रण के बाहर कार्य कर पाने का अधिकार शैतान के पास नहीं है।

परन्तु यह परीक्षा किस प्रकार की थी? यह "काँटा" क्या था? हमें नहीं बताया गया है। यह एक आत्मिक परीक्षा हो सकती है, जहाँ पर पौलुस का कोई व्याकुल करने वाला पाप अचानक ही भड़क उठा। कुछ ने, पौलुस द्वारा गलातियों को लिखी गई बात, "बड़े अक्षरों" के आधार पर अनुमान लगाया है कि यह उसकी दृष्टि से सम्बन्धित कोई बात हो सकती है (गलातियों 6:11)। परन्तु हम नहीं जानते हैं, क्योंकि पौलुस ने हमें बताया नहीं है। उसकी इच्छा थी कि हम उन शिक्षाओं को सीख सकें जो हर प्रकार की परीक्षा पर लागू हो सकें, परीक्षा चाहे जैसी भी हो।

यह वृतान्त हमें जो शिक्षाएँ सिखाता है, उनमें से एक है कि, शिक्षाओं को स्वीकार करना और सह पाना कठिन हो सकता है। तुरन्त ही पौलुस की प्रतिक्रिया थी, कि वह परमेश्वर से उसे हटा लेने की प्रार्थना करे। तीन बार (सम्भवतः तीन समयों पर), पौलुस उस बात को प्रभु के पास लेकर गया और प्रार्थना की, कि परीक्षा समाप्त कर दे। तुरन्त ही उसकी प्रतिक्रिया स्वीकार कर लेने और समर्पण कर देने की नहीं थी। यह सिखाने के द्वारा, कि उन्हें परीक्षा को तुरन्त ही स्वीकार कर लेना चाहिये, मसीहियों के लिये बहुत कठिनाइयाँ उत्पन्न की गई हैं। कुछ ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि भक्ति और परिपक्वता का चिन्ह, किसी भी परीक्षा को तुरन्त स्वीकार कर लेना है। जबकि यीशु ने भी, अपनी परीक्षा की घड़ी में प्रार्थना की थी कि परमेश्वर के प्रकोप का कटोरा उससे ले लिया जाये "यदि हो सके तो" (मत्ती 26:39)। यह सच है, कि उसने आगे कहा, "तौभी जैसा मैं चाहता हूँ वैसा नहीं, परन्तु जैसा तू चाहता है वैसा ही हो," परन्तु इस बाद की बात पर, पहले कही बात से अधिक महत्व देना, एक गम्भीर गलती होगी। यीशु जिस परीक्षा का सामना करने वाला था वह इतनी प्रचण्ड थी, और उसका पूर्वाभास इतना भयानक था, कि मानवीय स्वभाव से, उसकी प्रतिक्रिया, उसे हटा देने के लिये कहने की थी। इस स्वाभाविक स्वभाव को कभी भी कायरता नहीं कहना चाहिये। अपनी सही दिमागी हालत में, कोई भी पीड़ा और दुःख को सहना नहीं चाहता है।

पौलुस ने समर्पण के अनुग्रह को केवल संघर्ष और प्रार्थना ही के द्वारा अनुभव किया। और यही हमारे लिये भी सत्य होगा।

कुछ प्रार्थनाओं का उत्तर, हमारी इच्छा के अनुसार नहीं मिलता है। प्रार्थना का उत्तर हमेशा मिलता है, परन्तु कभी-कभी उत्तर "नहीं" होता है! यह कि पौलुस ने प्रार्थना के तीन समय उस परीक्षा के हटा लिए जाने में लगाए, हमें बताता है कि यह परीक्षा काफी लम्बे समय तक चली होगी, इससे पहले कि पौलुस को प्रभु की आवाज़ सुनाई दी कि, “मेरा अनुग्रह तेरे लिये बहुत है; क्योंकि मेरी सामर्थ्य निर्बलता में सिद्ध होती है” (2 कुरिन्थियों 12:9)। पौलुस को उसकी परीक्षा का कारण नहीं बताए जाने का अर्थ यह नहीं है कि कोई कारण था ही नहीं। दुःख सहने का अवश्य ही कोई कारण तो होता है, चाहे हम उसे पहचान न पाएँ। ईश्वरीय विधान का हमेशा ही कोई कारण होता है, और अन्ततः, वह परमेश्वर को महिमा देने के लिये होता है। पीड़ा का दिया जाना, किसी सनक से नहीं होता है, और न ही यह केवल सर्वाधिकार रखने की बात है, "क्योंकि वह मनुष्यों को अपने मन से न तो दबाता है और न दु: ख देता है" (विलापगीत 3:33)। इंग्लैण्ड के चेस्टर में, वॉटरगेट मार्ग पर स्थित एक घर पर, 1652 में खोदकर लिखा गया एक कथन है "ईश्वरीय विधान ही मेरी नियति है।" मुझे प्रतिदिन जो भी प्राप्त होता है, वह परमेश्वर का प्रावधान है, जिसमें परीक्षाएँ भी सम्मिलित हैं।

पौलुस आत्मिक घमण्ड में आ जाने के जोखिम में था, और उसे नीचे लाया गया। जब हम घुटनों पर आते हैं, परमेश्वर के सामने निरादर होते हैं, तब ही हमें सामर्थ्य प्राप्त होती है। परमेश्वर के पास पौलुस के करने के लिये कार्य था। उसे आगे चलकर कलीसियाएँ स्थापित करनी थीं और एक चौथाई नए नियम को लिखना था, परन्तु इनमें से किसी भी बात के होने से चौदह वर्ष पहले, परमेश्वर ने उस प्रेरित को, उसके पास "शैतान का एक दूत" भेजकर, और उसे एक काँटा चुभाकर, एक पीड़ा-पूर्ण शिक्षा द्वारा सिखाया।

पौलुस ने सीखा कि परमेश्वर का अनुग्रह हर परीक्षा में पर्याप्त होता है। वह मानवीय निर्बलताओं में अनुग्रह की सामर्थ्य है। यह उस की सामर्थ्य है जिसने रोटियों और मछलियों को बढ़ाया, जो पानी पर चला, और जिसने मुर्दों को जिलाया। और इस सामर्थी अनुग्रह को अनुभव करने के लिये आवश्यकताएँ क्या हैं? अपनी निर्बलताओं और आवश्यकताओं को मान लेना। और एक बार जब इस आत्मिक सामर्थ्य को अनुभव कर लेंगे, तब हम भी प्रेरित के साथ कह सकेंगे, “इसलिये मैं बड़े आनन्द से अपनी निर्बलताओं पर घमण्ड करूँगा कि मसीह की सामर्थ्य मुझ पर छाया करती रहे। इस कारण मैं मसीह के लिये निर्बलताओं में, और निन्दाओं में, और दरिद्रता में, और उपद्रवों में, और संकटों में प्रसन्न हूँ; क्योंकि जब मैं निर्बल होता हूँ, तभी बलवन्त होता हूँ" (2 कुरिन्थियों 12:9-10)।

चर्चा एवं मनन:

1. आप के लिये यूसुफ, अय्यूब, और पौलुस की कहानियों का कौन सा पक्ष सबसे अधिक शिक्षाप्रद है?

2. क्या आप बाइबल के किन्हीं अन्य पात्रों — या किसी जन को जानते हैं — जिनके दुःख उठाने को आप "अध्ययन सामग्री" के समान उपयोग कर सकते हैं?

3
कैसी प्रतिक्रिया नहीं दें

परीक्षाओं के प्रति कुछ गलत प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं। मैं आपके सामने तीन को रखता हूँ।

निराशा

पहली प्रतिक्रिया है *निराशा*। यह सम्पूर्ण आशा को खो देना है। परिस्थितियाँ हमारी सारी सांत्वना को चुरा सकती हैं और ऐसा लग सकता है कि अब कोई तरीका शेष नहीं है। मसीही, परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं को भुलाकर, स्वयं के प्रति दया और निराशा में लोट लगा सकते हैं। पौलुस ने कुरिन्थुस के लोगों से कहा, "हम चारों ओर से क्लेश तो भोगते हैं, पर संकट में नहीं पड़ते; निरुपाय तो हैं, पर निराश नहीं होते" (2 कुरिन्थियों 4:8)। भजन 43:5 एक नमूना देता है कि निराशा से किस प्रकार से व्यवहार करना चाहिये:

> "हे मेरे प्राण, तू क्यों गिरा जाता है? तू अन्दर ही अन्दर
> क्यों व्याकुल है? परमेश्वर पर भरोसा रख, क्योंकि वह
> मेरे मुख की चमक और मेरा परमेश्वर है; मैं फिर उसका
> धन्यवाद करूँगा।"

जीवन के प्रति जो अपेक्षा रखनी चाहिए, भजन हमेशा ही उसके बारे में यथार्थवादी होते हैं। वे हमारी आशाओं को कभी भी मनोहर दिखाने का प्रयास नहीं करते हैं। सार्वजनिक आराधना में उन्हें गाने से हमेशा ही एक ऐसी शान्ति मिलती है, जो अन्य गीतों से नहीं मिलती है। जैसा कि एक लेखक ने पूछा है कि, "ये अभागे मसीही क्या गाते हैं?" क्योंकि, वास्तविकता यही है कि, हम बहुधा स्वयं को जीवन की अग्नि-परीक्षाओं से अभिभूत पाते हैं। और हमारी आराधना, वह चाहे व्यक्तिगत हो, अथवा सार्वजनिक, से यह तथ्य प्रकट होना चाहिये। जिस आराधना में भजनों की निष्ठुर वास्तविकताएँ नहीं हैं, वह हमेशा ही छिछली रहेगी, और अवास्तविक भी हो सकती है।

उदाहरण के लिये, भजन 6 को ही ले लीजिये, जो घोर निराशा का एक भजन है। उसे ध्यान से पढ़ने में कुछ समय लगाइये:

> हे यहोवा, तू मुझे अपने क्रोध में न डाँट, और न झुंझलाहट
> में मुझे ताड़ना दे।

> हे यहोवा, मुझ पर अनुग्रह कर, क्योंकि मैं कुम्हला गया हूँ; हे यहोवा, मुझे चंगा कर, क्योंकि मेरी हड्डियों में बेचैनी है।
>
> मेरा प्राण भी बहुत खेदित है। पर तू, हे यहोवा, कब तक?
>
> लौट आ, हे यहोवा, और मेरे प्राण बचा; अपनी करुणा के निमित्त मेरा उद्धार कर। क्योंकि मृत्यु के बाद तेरा स्मरण नहीं होता; अधोलोक में कौन तेरा धन्यवाद करेगा?
>
> मैं कराहते कराहते थक गया; मैं अपनी खाट आँसुओं से भिगोता हूँ; प्रति रात मेरा बिछौना भीगता है। मेरी आँखें शोक से बैठी जाती हैं, और मेरे सब सताने वालों के कारण वे धुँधला गई हैं।
>
> हे सब अनर्थकारियो, मेरे पास से दूर हो; क्योंकि यहोवा ने मेरे रोने का शब्द सुन लिया है। यहोवा ने मेरा गिड़गिड़ाना सुना है; यहोवा मेरी प्रार्थना को ग्रहण भी करेगा।
>
> मेरे सब शत्रु लज्जित होंगे और बहुत ही घबराएँगे; वे लौट जाएँगे, और एकाएक लज्जित होंगे।

हम यहाँ पर पूरे भजन की व्याख्या तो नहीं कर सकते हैं, परन्तु भजनकार की निराशा की सीमा पर ध्यान कीजिये: उसे लगता है कि वह मृतकों के स्थान, अर्थात्, अधोलोक में प्रवेश करने ही वाला है। शोक के कारण उसकी आँखें बैठी जा रही हैं। अनर्थकारियो (शत्रुओं) ने उसे घेर लिया है। जैसा कि भजनों में बहुधा देखा जाता है, सबसे अधिक तनाव, भजन के मध्य में होता है:

> मैं कराहते कराहते थक गया; मैं अपनी खाट आँसुओं से भिगोता हूँ; प्रति रात मेरा बिछौना भीगता है। (भजन 6:6)

निश्चय ही, यह निराशा है! परन्तु उस निराशा से निकलने के मार्ग पर भी ध्यान कीजिये: "मुझ पर अनुग्रह कर…हे यहोवा, मुझे चंगा कर…मेरे प्राण बचा…मेरा उद्धार कर।" यह एक ऐसे जन की प्रार्थना है जिसे पता है कि परमेश्वर ने उसे त्याग नहीं दिया है, उसकी परीक्षा का कारण चाहे जो भी हो (और हमें बताया भी नहीं गया है), परमेश्वर वही परमेश्वर बना रहता है। अन्धकार और निराशा में, मसीहियों को भजनकार के साथ कहना चाहिये: "यहोवा ने मेरा गिड़गिड़ाना सुना है; यहोवा मेरी प्रार्थना को ग्रहण भी करेगा" (भजन 6:9)।

और, यहोवा की ओर अपनी दुहाई में, भजनकार उसकी किस विशिष्ट बात को थाम कर रखता है? परमेश्वर की "*करुणा के निमित्त*"(भजन 6:4)। यह इब्रानी शब्द, *हेसेद* है। यह पुराने नियम में लगभग 250 बार आया है। विलियम टिंडेल, जो एक अंग्रेज़ी सुधारक था, और जिसने इब्रानी बाइबल का अंग्रेजी अनुवाद किया था, ने इस शब्द का अनुवाद "प्रेमपूर्ण करुणा" करना चुना था।

परमेश्वर की प्रेमपूर्ण करुणा, या उसका अटल प्रेम उसकी वाचा से सम्बन्धित है, जिस में उसने कहा है, "कि मैं तेरा और तेरे पश्चात् तेरे वंश का भी परमेश्वर रहूँगा" (उदाहरण के लिये उत्पत्ति 17:7; निर्गमन 6:7; यहेजकेल 34:24; 36:28)। परमेश्वर और उसके लोगों के मध्य एक वाचा का बन्धन है, जो कभी टूट नहीं सकता है। और जब निराशा डराती है, तब यही बन्धन निराशा को दूर करता है, तथा प्रकाश और आशा को लाता है।

स्तोईकवादी

दूसरा, विश्वासी को *स्तोईकवादी* होने से बचकर रहना चाहिये।

स्तोईकवाद, यूनानियों और रोमियों के समय से बना हुआ है। तीसरी शताब्दी ईस्वी में शासन करने वाले रोम के एक कुख्यात सम्राट, मार्कस औरेलियुस, के लेखों का अध्ययन अभी भी किया जाता है। परन्तु स्तोईकवाद उससे भी बहुत पहले से है, उसकी जड़ें लगभग 300 ईस्वी पूर्व से, सीटियम के ज़ेनो द्वारा, एथेंस के प्राचीन अगोरा से हैं। और एथेंस के अरियुपगुस में पौलुस ने उनका सामना किया (प्रेरितों 17)।

हमें स्तोईकवाद की गहराइयों में जाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु उसके आधार का बिन्दु है "आत्मसंयमी" होकर, बिना कोई प्रतिक्रिया दिये दुःखों का सामना करना। परीक्षा के समय में उसकी सलाह वियोगी होने, या इन्कार करने की होती है। इस दृष्टिकोण से बुराई, पीड़ा, और दुःख उठाना मिथ्या हैं। यह मानने से कि वे वास्तविक हैं और उन पर ध्यान केन्द्रित करने से, वे वास्तविक हो जाते हैं। केवल सद्गुणों का ही महत्व है; केवल वही अच्छे होते हैं। हर बात को सद्गुणों की ओर कार्यकारी होना चाहिये। बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो इनके आवेगों से सबसे अधिक मुक्त रहता है। हमारे साथ घटने वाली घटनाओं पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं है। उनके प्रति क्या प्रतिक्रिया देनी है, हम केवल उसे ही चुन सकते हैं। हमें उन्हें स्वयं को तंग नहीं करने देना चाहिये। हमें भावनात्मक प्रतिक्रियाओं में नहीं उलझना चाहिये। किसी भी बात को हमें नीचे नहीं गिराने देना चाहिये। और यह तो कभी नहीं पूछना चाहिये कि ऐसा क्यों हो रहा है। स्तोईकवाद के दर्शन के आधार पर, पवित्रशास्त्र के लगभग प्रत्येक भजन की भर्त्सना होती है।

निःसंदेह, स्तोईकवाद में और भी बहुत कुछ है, परन्तु अपने सबसे अशिष्ट स्वरूप में, यह उन आवेगों का इन्कार करना है, जो मानवीय मानसिकता का भाग हैं। उदाहरण के लिये, स्तोईकवाद, उसके मित्र लाजर की मृत्यु का समाचार सुनने पर यीशु के आँसू बहाने को, या गतसमनी में उसकी मानसिक व्यथा के कारण जिससे "उसका

पसीना मानो लहू की बड़ी बड़ी बूँदों के समान भूमि पर गिर रहा था" (लूका 22:44), की निन्दा करेगा। ठीक है कि हमें अपनी भावनाओं को नियन्त्रण में रखना चाहिये, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका इनकार करना, या उन्हें पूरी तरह से दबाए रखना चाहिए। हमारे पास पूछने का अधिकार है कि, हम पर दुःख क्यों आया, जैसा अय्यूब ने पूछा था, चाहे परमेश्वर उत्तर न भी दे।

स्तोईकवाद हमारे अन्दर से बल पाता है। वह मानवीय प्रयास और इच्छा-शक्ति का धर्म है। मसीहियत भिन्न है। उदाहरण के लिये, पौलुस प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुष्टि प्राप्त करने की बात कहता है:

> मैं ने यह सीखा है कि जिस दशा में हूँ; उसी में सन्तोष करूँ। मैं दीन होना भी जानता हूँ और बढ़ना भी जानता हूँ; हर एक बात और सब दशाओं में मैं ने तृप्त होना, भूखा रहना, और बढ़ना–घटना सीखा है। जो मुझे सामर्थ्य देता है उसमें मैं सब कुछ कर सकता हूँ (फिलिप्पियों 4:11-13)।

इस खण्ड में पौलुस जो कहता है, उसमें दो बातों पर ध्यान कीजिये। पहली, पौलुस ने परीक्षाओं में सन्तुष्ट रहना बहुत संघर्ष द्वारा प्राप्त किया था। वह कहता है, "मैंने सीखा है।" वह चाहता है कि हम समझ लें कि यह आसानी से नहीं आया। दूसरी, उसकी सन्तुष्टि का स्त्रोत, उसमें विद्यमान कोई बात नहीं थी, बल्कि वह जो उसमें था, वह "जो मुझे सामर्थ्य देता है, उस [परमेश्वर] में।" परेशानियों के समयों में शान्त रहने की क्षमता, पवित्र आत्मा द्वारा अन्दर किये जाने वाले कार्य से आती है, जो हमें परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं को याद दिलाता है, और पाप तथा शैतान के ऊपर यीशु की विजय के बारे में आश्वस्त करता है। पौलुस जब कहता है कि, "मैं सब कुछ कर सकता हूँ," वह अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखने और अपने चरित्र की दृढ़ता के बारे में डींग नहीं हाँक रहा है। उसकी "सब कुछ करने" की योग्यता, उसमें कार्यकारी परमेश्वर की सामर्थ्य का परिणाम है। जैसा कि जॉन मैकार्थर अपनी व्याख्या में कहते हैं, "क्योंकि विश्वासी मसीह में हैं (गलातियों 2:20), वह उन्हें अपनी सामर्थ्य से भर देता है कि उन्हें पोषित बनाए रखे।"

कड़वाहट

तीसरी गलत प्रतिक्रिया *कड़वाहट* है। मैं जानता हूँ कि मसीही, उनके साथ अतीत में घटित घटनाओं की कड़वाहट को अपने अन्दर रखे रहते हैं। उससे उनके जीवन बदल गए, उनकी महत्त्वकांक्षाएँ और सपने बर्बाद हो गए। और बाइबल के अनुसार प्रतिक्रिया देने के स्थान पर, उन्होंने अपने मनों में "कड़वी जड़" (इब्रानियों 12:15) को बढ़ने दिया। दशकों बाद, वे उन घटनाओं को लेकर अभी भी क्रोधित और दुःखी हैं, कि वे क्यों हुई (या जब वे चाहते थे कि हों, तब क्यों नहीं हुई)।

वाक्यांश "कड़वी जड़," उस बात से संबंधित लगता है जो मूसा ने परमेश्वर तथा इस्राएल के मध्य की वाचा को दोहराते हुए कही थी: "ऐसा न हो कि तुम्हारे मध्य ऐसी कोई जड़ हो, जिस से विष या कड़वा बीज उगा हो"

(व्यवस्थाविवरण 29:18)। मूसा के मन में ऐसा पौधा था जिसकी जड़ें कड़वी होती हैं और उससे बीमारी तथा मृत्यु आ सकते हैं। इब्रानियों का लेखक, पूरी कलीसिया को सम्बोधित करते हुए, चेतावनी देता है कि इस तरह का विष हमेशा विद्यमान रहता है, और हमें सचेत रहना चाहिये कि कहीं हम उसे अपने अन्दर न ले लें।

जादू-टोना करने वाले शमौन को डाँटते हुए, पौलुस ने उससे कहा, "क्योंकि मैं देखता हूँ कि तू पित्त की सी कड़वाहट और अधर्म के बन्धन में पड़ा है" (प्रेरितों 8:23)। यह कड़वाहट से भरे होने का एक चरम उदाहरण है, जहाँ विष कुछ समय से था, और उससे यह व्यक्ति एक खतरनाक जादू-टोना करने वाला बन गया था।

कड़वाहट, हमारी अभिलाषाओं को नष्ट कर देने के लिये परमेश्वर के प्रति बने हुए क्रोध को, मार डालना चाहिये: "सब प्रकार की कड़वाहट, और प्रकोप और क्रोध, और कलह, और निन्दा, सब बैर भाव समेत तुम से दूर की जाए" (इफिसियों 4:31), जैसा कि पौलुस ने इफिसुस के लोगों से कहा है। कड़वाहट, परमेश्वर के विधानों में अविश्वास है। यह अदन की वाटिका में शैतान के झूठ पर विश्वास कर लेने के समान है, कि परमेश्वर के वचन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

चर्चा एवं मनन:

1. क्या इनमें से कोई बात आपको अपने लिये कार्यकारी प्रतीत होती है? क्या आप ने अपने जीवन में किसी बात के प्रति निराशा, स्तोईकवादी होने, या कड़वाहट की प्रतिक्रिया दी है?

2. बात के प्रति और भी अधिक परमेश्वर को आदर तथा विश्वासयोग्यता की प्रतिक्रिया देने में, भजन हमारी सहायता किस प्रकार से करते हैं?

4

अग्नि-परीक्षाओं का सामना करते समय मसीहियों को क्या करना चाहिये?

अब सकारात्मक बातों को देखने, और यह पूछने का समय आ गया है कि, अग्नि-परीक्षा के समय हमें क्या *करना* चाहिए। मैं आपके सामने दस सुझाव रखता हूँ।

I. *यथार्थवादी रहें*। अग्नि-परीक्षाओं के आने की आशा रखें। यदि आप के साथ बुरी बातें हों, तो भौंचक्के मत होइये। यीशु ने यह बात ऊपरौठी कोठरी में स्पष्ट कर दी थी। अपने शिष्यों से, जिन्हें अब उसकी भौतिक उपस्थिति के बिना ही जीवन का सामना करना था, बातें करते समय उसने कहा, "संसार में तुम्हें क्लेश होता है, परन्तु ढाढ़स बाँधो, मैं ने संसार को जीत लिया है" (यूहन्ना 16:33)। ये अग्नि-परीक्षाएँ मानसिक, भावनात्मक, या शारीरिक हो सकती हैं। वे वास्तविक हो सकती हैं, और कभी, जैसा कि हम कहते हैं, वे "दिमाग में" हो सकती हैं, परन्तु हमारे लिये कुछ कम वास्तविक नहीं होती हैं। आप या मैं अपवाद क्यों ठहरें?

कहा जाता है कि पहले से जान लेने से सुरक्षात्मक तैयारी का अवसर मिल जाता है। परन्तु यह हमेशा सच हो, ऐसा भी नहीं है। यीशु द्वारा दी गई चेतावनियों के प्रति, अविश्वास हमें अन्धा बना सकता है। स्वयं पर दया दिखाने से हम अपने ही विरुद्ध हो सकते हैं, और संदेह तथा क्रोध को अन्दर सुलगने दे सकते हैं।

II. *आप जो मांगते हैं, उसके बारे में सावधानी बरतें*! आपकी सर्वोच्च लालसा क्या है? क्या यह — इस संसार में यथासम्भव, भरपूरी से और पूरी तरह से, पवित्र ठहराए जाने की है, जैसी कि होनी चाहिये? आपके विचार से यह किस प्रकार से होगा? क्या परमेश्वर आपको एक आरामदेह बिस्तर पर लेटा देगा और आपको परेशानियों के ऊपर तैरने देगा? आप जानते हैं कि ऐसा नहीं होगा!

हमारी पवित्रता केवल तब ही आ सकती है जब हम संसार, शरीर, और शैतान के साथ युद्ध में लगे रहें। और युद्ध का अर्थ है पीड़ा और दुःख उठाना। यदि हम वैसी प्रार्थना करें जैसी कि रॉबर्ट मर्रे म्कशेयन ने एक बार की थी, जब उन्होंने कहा, "प्रभु मुझे उतना पवित्र बना जितना एक क्षमा प्राप्त पापी बन सकता है," तो हम परेशानियों को निमन्त्रण दे रहे हैं! यदि हम अपनी पवित्रता की वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं, तब संभव है कि आप को परीक्षाओं का सामना न करना पड़े (यद्यपि यह सम्भव है कि यह आपके अधूरे मन की प्रतिक्रिया को रद्द कर दे)। परन्तु यदि हमारी इच्छा पवित्रता है, तो पाप का नाश किया जाना उसका एक अनिवार्य भाग होगा, और पाप को मारना हमेशा ही पीड़ा दायक होता है।

III. *परमेश्वर के विधान को पहचानें*। हम विधान के सिद्धान्त की बात कर रहे हैं। मार्ग के हर कदम पर प्रभुता सम्पन्न प्रभु साथ है, आज्ञा देता और शासन करता हुआ, अपने उद्देश्यों को पूरा करता हुआ। अन्धकार में आप को केवल अपना हाथ बढ़ाना है, और वह उसे थाम लेगा। यदि आप किसी खाई में गिरें तो आप को पकड़ लेने के लिये उसकी बाहें वहाँ होंगी। ईश्वरीय-प्रवाधान का सिद्धान्त आप को रात को सोने में सहायता करेगा। यह रोमियों 8:28 का संसार है: "हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्‍वर से प्रेम रखते हैं, उनके लिये सब बातें मिलकर भलाई ही को उत्पन्न करती हैं; अर्थात् उन्हीं के लिये जो उसकी इच्छा के अनुसार बुलाए हुए हैं।" ईश्वरीय-प्रवाधान की इस सुरक्षा में, शान्ति और सन्तुष्टि हैं। इसके बाहर केवल गड़बड़ी, शोर, और अराजकता तथा मृत्यु की गन्ध ही है।

IV. *आग को गले लगा लें*। पौलुस, उन परीक्षाओं के बारे में कहते हुए, जो उसने सही थीं, केवल उन्हें स्वीकार करने और समर्पित रहने से ही सन्तुष्ट नहीं था। उसने अपने पाठकों से कहा कि वह उन में आनन्दित होता है! उसने कहा, "हम क्लेशों में भी घमण्ड करें," (रोमियों 5:3)। और उसकी अपेक्षा थी कि उसके पाठक भी यही करेंगे। जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं, जब हमने इस पद का हवाला दिया था, कि पौलुस ने यह स्पष्ट कर दिया था कि क्लेश से पवित्रता उत्पन्न होती है — धीरज, खरा निकालना, आशा, जो हमें आने वाली महिमा के लिये आश्वस्त करते हैं। याकूब ने भी, अपनी पत्री के आरम्भ में ही, इसी बात को कहा है: "हे मेरे भाइयों, जब तुम नाना प्रकार की परीक्षाओं में पड़ो, तो इसको पूरे आनन्द की बात समझो" (याकूब 1:2)। मानो, याकूब कुछ ऐसा कहने के लिये व्याकुल था, जिसे प्रत्येक मसीही को सुनना चाहिये। और केवल मसीही ही इस सन्देश के सत्य को सुन सकते हैं। क्योंकि मसीही जानते हैं कि जीवनों के लिये परमेश्वर की योजना में, क्लेशों का भी एक उद्देश्य है। उनसे हम मसीह के स्वरूप में ढाले जाते हैं और हमारे अन्दर स्वर्ग और महिमा की लालसा उत्पन्न होती है। मसीही जानते हैं कि यह संसार अस्थाई है, और वे केवल इसमें से होकर गुज़र रहे हैं, कि स्वर्गीय नगर में प्रवेश करें। अग्नि परीक्षा अस्थाई है। आने वाली महिमा चिर स्थाई है।

V. *निरन्तर प्रार्थना करते रहें*। कुछ परीक्षाएँ इस संसार की हमारी सम्पूर्ण यात्रा में हमारे साथ बनी रहेंगी। कुछ परीक्षाएँ अस्थाई होती हैं, परन्तु अन्य बनी रहती हैं। यह प्रार्थनाएँ कि उन्हें हटा दिया जाए, अप्रभावी प्रतीत होती हैं। पौलुस ने अपने "शरीर में काँटे" के लिये तीन समयों पर प्रार्थनाएँ कीं, कि प्रभु उसे हटा दे। परन्तु परमेश्वर की योजना यह नहीं थी। उसने, उसे बने रहने दिया, प्रेरित को यह याद दिलाते रहने के लिये कि उसने जिन बातों को देखा और सुना था, जिन्हें बताने की अनुमति नहीं थी, उसके बाद वह नम्र बना रहे। उनमें घमण्ड उत्पन्न करने की क्षमता थी, और यह सुनिश्चित करने के लिये कि ऐसा नहीं हो, परमेश्वर ने उसे दीन किया (2 कुरिन्थियों 12:1-10)।

निःसंदेह, बीमारी की अवस्था में, चँगाई के लिये प्रार्थना करना, सही है। आरम्भ में आशा होती है कि परमेश्वर, अपने प्रावधान द्वारा, चँगा और बहाल कर देगा। परन्तु, कभी-कभी यह प्रकट हो जाता है कि परमेश्वर का यह आशय नहीं है। और अन्त तक उस परीक्षा को सहते रहने के लिये सामर्थ्य तथा अनुग्रह प्राप्त करने के लिये प्रार्थनाओं की आवश्यकता बनी रहेगी। यह समझ पाना आसान नहीं है कि किस समय पर आकर प्रार्थनाओं में यह परिवर्तन करना चाहिये। प्रत्येक जन के लिये बात भिन्न होगी, तथा उसके लिये बुद्धिमानी माँगनी पड़ेगी।

VI. *अपने ज्ञान की सीमाओं को स्वीकार कर लें*। कुछ परीक्षाएँ उन पर भी आती हैं, जो निर्दोष होते हैं। इसे थोड़ा समझाने की आवश्यकता है। एक दृष्टिकोण से कोई भी निर्दोष नहीं है। हम सभी आदम के पाप से दोषी हैं: "इसलिये जैसा एक मनुष्य के द्वारा पाप जगत में आया, और पाप के द्वारा मृत्यु आई, और इस रीति से मृत्यु सब मनुष्यों में फैल गई, क्योंकि सब ने पाप किया" (रोमियों 5:12)। आदम के सभी वंशजों ने आदम में पाप किया, क्योंकि वह हमारा प्रतिनिधित्व करने वाला स्थापित अगुवा है। उसमें, सम्पूर्ण मानव जाति दोषी मानी गई है। परन्तु उस व्यक्ति के बारे में विचार कीजिये, जो जन्म से अन्धा था, और जिससे यीशु मिला था (यूहन्ना 9:1)। शिष्यों ने पूछा, “हे रब्बी, किसने पाप किया था कि यह अंधा जन्मा, इस मनुष्य ने या इसके माता–पिता ने?” (यूहन्ना 9:2)। और यीशु ने उत्तर देते हुए कहा, “न तो इसने पाप किया था, न इसके माता–पिता ने; परन्तु यह इसलिये हुआ कि परमेश्‍वर के काम उसमें प्रगट हों" (यूहन्ना 9:3)। यीशु यह सुझाव नहीं दे रहा था कि वह व्यक्ति किसी प्रकार से आदम के पाप से मुक्त था। यीशु जो कह रहा था, वह था कि उसका अन्धापन, उसके या उसके माता-पिता के किसी *विशिष्ट* पाप के कारण परमेश्वर का दिया गया दण्ड नहीं था। यह *निर्दोष* क्लेश उठाने का एक उदाहरण है। यह अय्यूब वाली बात, जिस पर हमने पहले विचार किया है, के समान है।

इस अंधे व्यक्ति की दशा के बारे में यीशु एक बहुत रोचक टिप्पणी करता है। शिष्यों को उनके प्रश्न "वह दुःख क्यों उठा रहा था" का उत्तर चाहिये था। और उनकी समझ यही थी कि या तो उसे, अन्यथा उसके

माता-पिता को, अतीत के किसी पाप का दण्ड मिल रहा था। परन्तु यीशु उनसे कुछ बिल्कुल भिन्न कहता है, और यह बताता है कि उसका दुःख उठाना "इसलिये हुआ कि परमेश्‍वर के काम उसमें प्रगट हों" (यूहन्ना 9:3)। यीशु ने उस मनुष्य को चँगा कर दिया, और अन्धकार की शक्तियों के ऊपर अपनी सामर्थ्य को दिखा दिया। इस व्यक्ति की परीक्षा का कारण था कि शिष्यों पर, और हम पर, जो इस कहानी को पढ़ते हैं, यीशु की सामर्थ्य प्रकट हो।

यह सम्भव है कि हमारी कुछ परीक्षाएँ पवित्र आत्मा की सामर्थ्य को उनमें प्रकट करने के लिये होती हैं, जो परखे जा रहे हैं, ताकि हम सामर्थ्य और विश्वास में आगे बढ़ें, और यीशु मसीह के जी उठने की सामर्थ्य के गवाह बन सकें।

VII. *भले को देखें*। परीक्षाएँ विश्वास को दृढ़ करती हैं और आत्मा के फलों को बढ़ावा देती हैं। यह रोमियों 5:3-5 जैसे खण्डों की शिक्षा है, जिसे हम पहले देख चुके हैं।

परन्तु यह अन्य खण्डों का सन्देश भी है। जैसा कि हम देख चुके हैं, याकूब, अपनी पत्री के आरम्भ में ही इस विषय को सम्बोधित करता है: "हे मेरे भाइयो, जब तुम नाना प्रकार की परीक्षाओं में पड़ो, तो इसको पूरे आनन्द की बात समझो, यह जानकर कि तुम्हारे विश्वास के परखे जाने से धीरज उत्पन्न होता है। पर धीरज को अपना पूरा काम करने दो कि तुम पूरे और सिद्ध हो जाओ, और तुम में किसी बात की घटी न रहे" (याकूब 1:2-4)। जब परीक्षाओं के साथ बाइबल के अनुसार व्यवहार किया जाता है, तब वे हमें "पूरे और सिद्ध" बनाती हैं। निश्चय ही यह पूरा और सिद्ध होना इस संसार में अनुभव नहीं किए जा सकते हैं। याकूब की सोच है कि परीक्षाएँ हमें उस सँकरे मार्ग से जाने के लिये उकसाती हैं, जो अनन्त जीवन को ले जाता है। इब्रानियों का लेखक भी इसी बात को कहता है: "वे तो अपनी–अपनी समझ के अनुसार थोड़े दिनों के लिये ताड़ना करते थे, पर वह तो हमारे लाभ के लिये करता है, कि हम भी उसकी पवित्रता के भागी हो जाएँ। वर्तमान में हर प्रकार की ताड़ना आनन्द की नहीं, पर शोक ही की बात दिखाई पड़ती है; तौभी जो उसको सहते–सहते पक्के हो गए हैं, बाद में उन्हें चैन के साथ धर्म का प्रतिफल मिलता है" (इब्रानियों 12:10-11)।

VIII. *अपनी परीक्षाओं को उलटी ओर से देखिये*। परीक्षाओं के समय में बातों में कुछ अर्थ दिखाई नहीं देता है। हमें वास्तविकता दिखाई नहीं देती है। हमें उनसे ऊपर उठकर उन्हें देखना चाहिये, जैसे कि किसी वायुयान में चढ़ कर 35,000 फीट की ऊँचाई पर पहुँचना। तब, जब हम आगे और पीछे की ओर देखते हैं, तो हमें वह मार्ग दिखाई देता है, जिस पर से, हो सकता है कि हम भटक गये हों, और परमेश्वर का हाथ हमें वापस उसकी ओर ले जा रहा है। जब हम इन परीक्षाओं के आने के कारण का उत्तर देने

में स्वयं को असमर्थ पाते हैं, तब हमें उस पर भरोसा रखना चाहिये, यह जानते हुए कि वह न हमें कभी छोड़ेगा और न कभी त्यागेगा (व्यवस्थाविवरण 31:8; इब्रानियों 13:5)।

IX. *सदा याद रखें कि आप की जेब में प्रतिज्ञा नामक एक कुँजी है*। घोर परीक्षा के समय में, जब अन्धकार इतना घना था कि मुझे डर लगा कि परमेश्वर ने मुझे छोड़ दिया है, तीन मित्र मेरे चारों ओर आए, और मेरे लिये एक उपहार लाए। वह हाथ से बनाई हुई एक तख्ती थी, जिसका आकार एक सामान्य पुस्तक के जितना था, उसपर ये शब्द खोद कर लिखे गये थे: "प्रतिज्ञा नामक एक कुँजी।"

बनयन की पुस्तक, *मसीही मुसाफिर*, में मसीही और आशावान मार्ग से भटक जाते हैं, और उन्हें निराशा नामक दैत्य पकड़ लेता है, और सन्देह नामक किले में एक गहरी काल-कोठरी में कैद कर लेता है। शीघ्र ही वे मायूसी में डूबने लगते हैं, उन्हें कोई मार्ग सूझ नहीं पड़ता है, जब तक कि मसीही को यह याद नहीं आता है कि उसकी जेब में प्रतिज्ञा नामक एक कुँजी है। उस कुँजी का प्रयोग करके, मसीही और आशावान अपनी बन्दीगृह के द्वारों को खोल पाते हैं और बचकर सँकरे मार्ग पर लौट आते हैं।

इन दोनों प्रतिज्ञाओं पर विचार कीजिये, और इन्हें बारम्बार पढ़िये:

> मत डर, क्योंकि मैं ने तुझे छुड़ा लिया है;
>
> मैं ने तुझे नाम लेकर बुलाया है, तू मेरा ही है।
>
> जब तू जल में होकर जाए, मैं तेरे संग संग रहूँगा;
>
> और जब तू नदियों में होकर चले, तब वे तुझे न डुबा सकेंगी; जब तू आग में चले तब तुझे आँच न लगेगी, और उसकी लौ तुझे न जला सकेगी। क्योंकि मैं यहोवा तेरा परमेश्वर हूँ,
>
> इस्राएल का पवित्र मैं तेरा उद्धारकर्ता हूँ। (यशायाह 43:1-3)

अत: हम इन बातों के विषय में क्या कहें? यदि परमेश्वर हमारी ओर है, तो हमारा विरोधी कौन हो सकता है? जिसने अपने निज पुत्र को भी न रख छोड़ा, परन्तु उसे हम सब के लिये दे दिया, वह उसके साथ हमें और सब कुछ क्यों न देगा? परमेश्वर के चुने हुओं पर दोष कौन लगाएगा? परमेश्वर ही है जो उनको धर्मी ठहरानेवाला है। फिर कौन है जो दण्ड की आज्ञा देगा? मसीह ही है जो मर गया वरन् मुर्दों में से जी भी उठा, और परमेश्वर के दाहिनी ओर है, और हमारे लिये निवेदन भी करता है। कौन हम को मसीह के प्रेम से अलग करेगा? क्या क्लेश, या संकट, या उपद्रव, या अकाल, या नंगाई, या जोखिम, या तलवार? जैसा लिखा है,

> “तेरे लिये हम दिन भर घात किए जाते हैं; हम वध होनेवाली भेड़ों के समान गिने गए हैं।”

परन्तु इन सब बातों में हम उसके द्वारा जिसने हम से प्रेम किया है, जयवन्त से भी बढ़कर हैं। क्योंकि मैं निश्चय जानता हूँ कि न मृत्यु, न जीवन, न स्वर्गदूत, न प्रधानताएँ, न वर्तमान, न भविष्य, न सामर्थ्य, न ऊँचाई, न गहराई, और न कोई और सृष्टि हमें परमेश्वर के प्रेम से जो हमारे प्रभु मसीह यीशु में है, अलग कर सकेगी। (रोमियों 8:31-39)

X. *याद रखिये, ये संसार आप का घर नहीं है*। जब पतरस, 1 पतरस 4:12-16 में अग्नि-परीक्षा की बात करता है, तब वह कई रोचक और महत्वपूर्ण बातों को बताता है। पहली, हमें परीक्षाओं को "अनोखी बात" (पद 12) नहीं समझना चाहिये। उसके कहने का तात्पर्य है कि प्रत्येक मसीही को दुःख उठाने की अपेक्षा रखनी चाहिये। दूसरी, जब मसीही दुःख उठाते हैं, तब वे मसीह के दुःखों में सहभागी होते हैं (पद 13)। पतरस की बात का यह अर्थ नहीं है कि हमारा दुःख उठाना, हमारे प्रायश्चित में योगदान देता है। यह तो कभी हो ही नहीं सकता है। पतरस के कहने का अर्थ है कि, हम मसीह के साथ जुड़े हुए हैं, और हमारे दुःख, उसके भी दुःख हैं। प्रेरितों 7 में, जब शाऊल के कहने पर, लोगों ने स्तिफनुस को मारने के लिये पत्थर उठाए, यीशु ने शाऊल से कहा, "तू मुझे क्यों सताता है?” वे यीशु के एक मेम्ने को सता रहे थे, परन्तु, प्रभावी रीति से, वे पत्थरवाह *उसे* कर रहे थे। मसीह ने जो दुःख उठाए, हम तो कभी उनमें सम्मिलित नहीं हो सकते हैं, परन्तु वह हमारे दुःखों में सम्मिलित हो सकता है। इब्रानियों की पुस्तक बताती है कि यीशु हमारे दुःखों में हमारे साथ किस प्रकार सहानुभूति दिखाता है (इब्रानियों 4:15)। तीसरी, पतरस बताता है कि जब *हम मसीही होने के कारण दुःख उठाते हैं*; तब हमें स्वयं को आशीषित समझना चाहिये, कि महिमा का आत्मा "हम पर छाया करता है" (1 पतरस 4:14)। यह सम्भावना है कि हम में किसी पाप के कारण हम दुःख उठाते हैं, पतरस कहता है (1 पतरस 4:15), परन्तु हमारा कोई दोष न होते हुए भी यदि हम पर दुः ख आएँ, तो हमें उस आने वाली महिमा के बारे में मनन करना चाहिये।

> स्वर्ग हमारा घर है। और अन्ततः, नया आकाश और नई पृथ्वी आएँगे (यशायाह 65:17; 66:22; 2 पतरस 3:13)। अग्नि-परीक्षा अस्थाई है। आने वाले युग में हमारा नया निवास स्थान अनन्तकाल का है। हमारे अस्तित्व की उस अवस्था में, किसी भी प्रकार की कोई परीक्षा नहीं होगी: "वह उनकी आँखों से सब आँसू पोंछ डालेगा; और इसके बाद मृत्यु न रहेगी, और न शोक, न विलाप, न पीड़ा रहेगी; पहली बातें जाती रहीं” (प्रकाशितवाक्य 21:4)।

इसलिये, जब तक नया यरूशलेम दिखाई न दे, परिश्रम के साथ आगे बढ़ते रहें।

चर्चा एवं मनन:

1. क्या उपरोक्त में से कोई भी बात आप को विशेष रीति से कठिन लगती है?

2. अपनी किसी वर्तमान परीक्षा से पार होने के लिये, आप उपरोक्त परामर्शों में से किस को अपना सकते हैं?

निष्कर्ष

प्रत्येक मसीही, स्वर्ग की अपनी तीर्थ यात्रा के दौरान, विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं का अनुभव करने की अपेक्षा कर सकता है। मसीही एक पतित संसार में रहते हैं, और शैतान "गर्जनेवाले सिंह के समान इस खोज में रहता है कि किस को फाड़ खाए" (1 पतरस 5:8)। इसके अतिरिक्त, मसीही अभी पूरी तरह से पवित्र नहीं हैं। हमारे अन्दर एक युद्ध चल रहा है, जिसे प्रेरित पौलुस, संक्षेप में, इस तरह से बताता है: "क्योंकि जिस अच्छे काम की मैं इच्छा करता हूँ, वह तो नहीं करता, परन्तु जिस बुराई की इच्छा नहीं करता, वही किया करता हूँ। अत: यदि मैं वही करता हूँ जिस की इच्छा नहीं करता, तो उसका करने वाला मैं न रहा, परन्तु पाप जो मुझ में बसा हुआ है" (रोमियों 7:19-20)। कभी-कभी परीक्षाएँ हमारी अभक्ति पूर्ण प्रतिक्रियाओं का परिणाम होती हैं। परन्तु, जैसा कि अय्यूब ने अनुभव किया, परीक्षाएँ हमारा कोई दोष न होने पर भी आ सकती हैं।

प्रत्येक परीक्षा में, हम इस बात के लिये आश्वस्त रह सकते हैं कि नियन्त्रण परमेश्वर के हाथों में है और वह हमेशा हमारी सहायता करेगा कि हम परीक्षा पर विजयी हों तथा अनुग्रह और साहस के साथ प्रतिक्रिया दें, और परीक्षा से बढ़ना सीखें। पवित्र आत्मा की सहायता से, परीक्षाएँ आत्मा के फल उत्पन्न कर सकती हैं, और हमें यीशु की समानता में और भी अधिक बना सकती हैं।

मसीही, अय्यूब के शब्दों से ढाढ़स प्राप्त कर सकते हैं: "जब वह मुझे ता लेगा तब मैं सोने के समान निकलूँगा" (अय्यूब 23:10b; देखिये याकूब 1:12; 1 पतरस 1:7)।

डेरेक थॉमस, वेल्स (यके) के मूल निवासी हैं और उन्होंने उत्तरी आयरलैण्ड के बेलफास्ट; मिस्सिसिपी के जैक्सन; और दक्षिणी कैरोलिना के कोलंबिया में स्थित मण्डलियों में सेवा की है। वे रिफॉरमेड थियोलॉजिकल सेमनरी से सम्बन्धित चाँसलर प्रोफेसर, तथा लिगोनियर मिनिस्ट्रीज़ में एक शिक्षक फेलो हैं। वे अपनी पत्नी रोज़मेरी के साथ लगभग 50 वर्ष से विवाहित हैं, और उनके दो बच्चे और दो पोते हैं। उन्होंने तीस से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं।